भाग - 1

करके देखा, समझ गया

जीवन से सराबोर विज्ञान शिक्षण के एक प्रशिक्षण शिविर की कहानीः कुछ एहसास, कुछ विश्लेषण

सुभाष चन्द्र गांगुली

यह आलेख होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के तहत आयोजित एक प्रशिक्षण शिविर की रिपोर्टिंग के रूप में है। इस शिविर में मध्य प्रदेश के कुछ ज़िलों के मिडिल स्कूल के विज्ञान शिक्षक सहभागी थे।

कोशिश यह नहीं है कि प्रशिक्षण शिविर का समग्र वर्णन प्रस्तुत किया जाए बल्कि यहाँ कक्षा में किए गए एक प्रयोग का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है जो कई दिनों तक चला था। यह विज्ञान शिक्षा की एक विधि को सामने लाता है। पहला भाग एक प्रेक्षक के रूप में मेरे (और मेरे एक युवा साथी दीपक पाल, जिसके आग्रह पर मैं इस शिविर में पहुँचा था) के अनुभव का वर्णन है। दूसरे भाग में उक्त विधि को लेकर कुछ विश्लेषण, निष्कर्ष और विचार सम्मिलित हैं।

किसी भी भ्रम से बचने के लिए यह बताना ज़रूरी है कि मैं न तो कोई विशेषज्ञ हूँ और न ही सम्बन्धित प्रयोग के विषय में कोई खास रुचि रखता हूँ। लिहाज़ा, बात सिर्फ इस प्रयोग-विशेष की नहीं बल्कि इस प्रयोग द्वारा उजागर विधि की है। वैसे मेरे मकसद की पूर्ति बेहतर ढंग से होती यदि विभिन्न विषयों से जुड़े प्रयोगों को उदाहरण के तौर पर लिया जाता।

कहने की ज़रूरत नहीं कि यह अनुभव बहुत स्फूर्तिदायक रहा था। वरना यह लेख लिखा ही न जाता। मैं इस शिविर में अपने घर (कोलकाता) से तकरीबन एक हज़ार किलोमीटर दूर महज़ एक प्रेक्षक के तौर पर गया था, रिपोर्ट वगैरह बनाना कोई मकसद नहीं था। जब मैं कोलकाता लौटा तो जिन दोस्तों को ये अनुभव सुनाए वे सब चाहते थे कि इसे लिखा जाए। यह लेख उसी आग्रह का नतीजा है। यह शिक्षा पर कोई शोधपरक लेख नहीं है। यह भी सम्भव है कि एक नाखुश विज्ञान छात्र रहा होने का अवचेतन स्तर पर असर इस लेख की विषयवस्तु और भावना पर हुआ हो। इसके अलावा, यह लेख पाठकों से

एक संवाद शुरू करने की भावना के साथ लिखा गया था। इसलिए बातचीत में स्वाभाविक रूप से जो दोहराव होता है, वह यहाँ भी झलकेगा।

और अन्तिम बात। यह लेख मूलतः बंगाली में लिखा गया था।

***

मैंने सुना, भूल गया
मैंने देखा, याद रहा
मैंने करके देखा, समझ गया

ये तीन बोधवाक्य कक्षा-6 की एक विज्ञान पाठ्यपुस्तक के पिछले कवर के अन्दर वाले पृष्ठ पर मोटे-मोटे अक्षरों में छपे हैं। लेखकों की सूची के नीचे निम्नलिखित वाक्य लिखा है:

समर्पण

खेतिहर मज़दूरों, छोटे किसानों व देहात के उन अधिकांश बच्चों को जो स्कूल नहीं जा पा रहे हैं, जिनसे पिछले छः वर्षों में विज्ञान शिक्षण को गाँव के जीवन और पर्यावरण से जोड़ने की प्रेरणा मिली।

जिन लोगों को यह प्रेरणा मिली (अर्थात् इस पुस्तक के लेखक) उनमें निम्नलिखित संस्थानों के लोग शामिल थे:

- टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च
- टीचर्स ट्रेनिंग ग्रुप, दिल्ली विश्वविद्यालय
- मध्यप्रदेश कॉलेज साइन्स टीचिंग ग्रुप
- फ्रेंड्स रूरल सेंटर, रसूलिया
- किशोर भारती, बनखेड़ी

16 ग्रामीण उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक और छात्र जो 1972 से *करके सीखो विज्ञान* का प्रशिक्षण दे रहे हैं और ले रहे हैं, इन्हीं लोगों ने मिलकर कक्षा 7 व 8 की पुस्तकें भी तैयार की हैं।

राज्य सरकार ने इन पुस्तकों को होशंगाबाद के समस्त मिडिल स्कूलों के अलावा मध्य प्रदेश के कुछ अन्य ज़िलों (जैसे, धार, मंदसौर, उज्जैन) के चुनिन्दा स्कूलों में उपयोग के लिए विहित (मान्य) किया है। किशोर भारती और फ्रेंड्स रूरल सेंटर (ये संगठन ग्रामीण विकास तथा ग्रामीण आत्मनिर्भरता की दिशा में कई कार्यक्रम चलाते हैं) होशंगाबाद में कार्यक्रम को शुरू करने वाले संगठन थे। यहाँ कार्यक्रम को 1972 में प्रायोगिक रूप से 16 स्कूलों में शुरू किया गया था। समय के साथ यह कार्यक्रम उनके शेष समस्त कार्यक्रमों से आगे निकल गया। कार्यक्रम के बेहतर संचालन के लिए 1982 में एक नई संस्था *एकलव्य* अस्तित्व में आई। तब से इस कार्यक्रम के संचालन की पूरी ज़िम्मेदारी इस नई संस्था ने सँभाली है। इस नई संस्था में किशोर भारती तथा फ्रेंड्स रूरल सेंटर के संस्थापक कार्यकर्ता तो शामिल हैं ही, साथ में कई नए कार्यकर्ता (मुख्यतः कॉलेज व स्कूल के शिक्षक) भी जुड़े हैं।

हर साल गर्मी की छुट्टियों (मई-जून) में एकलव्य प्रदेश में दो-तीन स्थानों (होशंगाबाद, उज्जैन, भोपाल)

पर शिक्षक प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करता है। 1985 के उज्जैन शिविर में (जी हाँ, क्षिप्रा किनारे वही कालिदास का उज्जैन) पश्चिम बंगाल से मैं और मेरा साथी दीपक पाल शामिल हुए थे। हमारे लिए मुख्य आकर्षण शिक्षण का कथित नवीन तरीका था (हमने जो कुछ सुना था उससे हमारा यही एहसास बना था और अवलोकन ने उस एहसास की पुष्टि कर दी) जिसमें प्रयोगों के आधार पर विज्ञान पढ़ाया जाता था। उस समय तक कार्यक्रम के बारे में हमारी जानकारी दोस्तों से सुन-सुनकर और पत्र-पत्रिकाओं में छपी इक्का-दुक्का रिपोर्ट्स तक सीमित थी। हमारी योजना तो यहाँ एक हफ्ता ठहरने की थी मगर हम कार्यक्रम की तीन सप्ताह की पूरी अवधि के लिए रुके। कहना मुश्किल है कि इसके लिए किस हद तक कार्यक्रम का वास्तविक आकर्षण ज़िम्मेदार था और किस हद तक हमारा सम्मोहित हो जाना (जो एक पर्याप्त परिपक्व मस्तिष्क के अभाव में काफी सम्भव है)। अलबत्ता, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमें मज़ा आया। और यह खोज भी बुरी नहीं थी कि हम लोग जो स्कूली वर्षों से इतना आगे निकल आए हैं, के लिए भी मिडिल स्कूल के लिए विकसित शिक्षण कार्यक्रम शिक्षाप्रद हो सकता है। दरअसल, कभी-कभी तो हम आनन्दविभोर हो गए।

इसका मतलब यह नहीं है कि हम कार्यक्रम की खामियाँ ढूँढ़ने के आसान-से काम में असफल रहे या हमारी खोपड़ी में सवाल नहीं उठते रहे। किन्तु अगले पन्नों पर शाब्दिक प्रवाह में खामियों या कमियों की बात नहीं है। हम तो पाठकों के साथ वह साझा करना चाहते हैं जो हमें अच्छा लगा और इस अनुभव ने हमारे अन्दर जो विचार और भावनाएँ जगाईं। यह चेतावनी देना भी लाज़मी है कि स्नैपशॉट्स के रूप में यह विवरण न तो सम्पूर्ण है और न ही अन्तिम। वर्तमान विवरण से अधिक-से-अधिक यह उम्मीद की जा सकती है कि कार्यक्रम से एक मोटा-मोटा परिचय हो जाए अर्थात् उसकी विशेषताएँ, खूबियाँ, कमज़ोरियाँ वगैरह। तथ्यों और विचारों को लेकर कुछ त्रुटियाँ ज़रूर दिख सकती हैं।

कहानी शुरू करने से पहले पाठकों को यह याद दिलाना ज़रूरी है कि यहाँ सीखने वाले यानी 'छात्र' मिडिल स्कूल, उच्च माध्यमिक व उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के शिक्षक हैं। स्रोत व्यक्तियों में से भी कई इन्हीं श्रेणियों के हैं। अलबत्ता, स्रोत व्यक्तियों में कुछ वर्तमान व भूतपूर्व कॉलेज व विश्वविद्यालयीन शिक्षक तथा शोधकर्ता व अन्य वैज्ञानिक कर्मी भी शामिल हैं। प्रशिक्षण इस बात का था कि मिडिल स्कूल के विज्ञान शिक्षक क्या पढ़ाएँगे और कैसे।

अण्डे, चूज़े और मुर्गी की टाँगें

उगते सूरज की कोमल किरणों में नहाई हुई एक ताज़गी भरी शीतल

सुबह, जो कोलकाता, जहाँ से हम कुछ ही दिन पहले निकले थे, में जून की शुरुआत में उमस भरी सुबह से बहुत अलग है। बाद में एक शिक्षक से दोस्ताना गपशप में मज़ाक के तौर पर यह सूक्ति कही गईः 'मालवा शाश्वत वसन्त और आलसी लोगों का इलाका है।' उज्जैन इसी मालवा क्षेत्र में बसा है। थोड़ा ऊँचाई पर होने के कारण यहाँ की जलवायु संयमित है। जहाँ तक 'आलस्य' की बात है तो यह शायद यथार्थ की नहीं बल्कि एक स्वस्थ, हल्के-फुल्के व आत्म-निन्दात्मक विनोद की परिचायक है। जिस थोड़े-से समय के लिए हम वहाँ रुके, हमें नहीं लगा कि अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा यहाँ के लोग आलसी हैं। देखा जाए, तो वे विशाल हृदय और सौजन्य के धनी हैं। मगर मैं अपनी बात से भटक रहा हूँ।

विभिन्न कमरों में 6 अलग-अलग कक्षाएँ चल रही हैं। प्रशिक्षुओं के लिए रोज़ाना 7 से 12 तक कक्षाएँ होती हैं। बीच में आधे घण्टे का ब्रेक। स्रोत व्यक्तियों-प्रशिक्षकों के लिए दोपहर में 3 बजे एक और अनिवार्य सत्र होता है जिसे 'फीडबैक' कहते हैं। यहाँ उस दिन की कक्षावार रिपोर्टें प्रस्तुत होती हैं, उनका विश्लेषण होता है, आकलन होता है और आलोचना होती है। यह सब असाधारण रूप से खुले, स्पष्टवादी और गहन तरीके से होता है। और इसके आधार पर, ज़रूरी हो तो, अगले दिन के प्रशिक्षण कार्य में परिवर्तन-संशोधन के निर्णय लिए जाते हैं। फीडबैक बैठक शाम 6 बजे तक पूरी हो जानी चाहिए किन्तु आम तौर पर यह उसके काफी बाद तक चलती रहती है।

प्रयोग का पहला दिन

हम एक कक्षा में बैठ गए। लगभग तीस महिला व पुरुष प्रशिक्षु (मिडिल स्कूल शिक्षक) चार-चार की टोलियों में दरियों पर बैठे हैं। कमरे में कोई कुर्सी नहीं है। एक मेज़ ज़रूर है जिसका उपयोग प्रयोग सामग्री रखने के लिए किया जाता है। मात्र देखकर प्रशिक्षकों और प्रशिक्षुओं के बीच भेद कर पाना मुश्किल है। चर्चा के दौरान आम तौर पर कोई एक स्रोत व्यक्ति उस्ताद की भूमिका निभाता है। कक्षा के अन्य लोग सवाल पूछकर, सुझाव देकर, कुछ जोड़कर, फेरबदल करके और तकरार करके पूरे विमर्श को मज़बूत करते हैं और उसमें विविधता पैदा करते हैं। जी हाँ, तकरार, आपने सही पढ़ा। कभी-कभी एक से ज़्यादा उस्ताद भी होते हैं। और स्रोत समूह में प्रायः एक व्यक्ति ऐसा भी होता है जिसका खास काम फीडबैक बैठक में उस्ताद के काम की 'नुक्ताचीनी' करना होता है। हमेशा तो नहीं, पर कई बार ऐसा होता है कि फीडबैक के दौरान किसी कक्षा के उस्ताद और उसके फीडबैक रिपोर्टर के बीच आदान-प्रदान मज़ेदार ढंग से गरमा जाता है और अन्य लोगों को बीच-बचाव करना पड़ता है। कक्षा और फीडबैक बैठकों में

बातचीत हिन्दी में होती है। बीच-बीच में अँग्रेज़ी तकनीकी शब्द टपकते रहते हैं।

स्रोत व्यक्ति कुछ प्रशिक्षुओं की मदद से उपकरण-यंत्र और प्रायोगिक सामग्री टोलियों को बाँटते हैं, हर टोली को एक पूरा सेट मिलता है। ऐसे पूरे सेट को किट कहते हैं। आज की कक्षा में इस किट में एक प्लास्टिक का कटोरा और एक तश्तरी (ऊँची किनोर वाली), थोड़ी रुई, एक छोटी चिमटी, प्लास्टिक ड्रॉपर, छोटा चाकू, एक परखनली, और एक हैंडलेंस शामिल हैं।

प्रायोगिक सामग्री के रूप में प्रत्येक टोली को मुर्गी के दो-दो अण्डे दिए गए थे – एक कच्चा और एक उबला हुआ। प्रयोग शुरू होने से पहले ही सीखने वालों और स्रोत व्यक्तियों के बीच बातचीत में यह स्पष्ट रूप से सामने आया (जो कई शिक्षक पहले से जानते थे) कि मुर्गी द्वारा अभी-अभी दिए गए अण्डे का अन्दरुनी भाग एक इकलौती जन्तु कोशिका होती है। ज़ाहिर है कि यह कोशिका अन्य अपेक्षाकृत बड़ी मानी जाने वाली कोशिकाओं, जिन्हें किसी भी जीव (पौधे या जन्तु) के निर्माण की इकाइयाँ कहते हैं, से भी बहुत बड़ी है और यह दर्शाती है कि एक इकलौती कोशिका कितनी बड़ी हो सकती है। आम तौर पर जन्तु व पादप काया को बनाने वाली कोशिकाएँ समूहों के रूप में पाई जाती हैं और उन्हें एक-दूसरे से अलग देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी की मदद लगती है। दूसरी ओर, मुर्गी के अण्डे की कोशिका को तो नंगी आँखों से ही देखा जा सकता है।

इससे (यानी मुर्गी के अण्डे से) यह रोचक व उल्लेखनीय तथ्य भी रेखांकित होता है कि निर्माण इकाई की कोशिकाओं, जो हमेशा समूहों में पाई जाती हैं, के अलावा प्रकृति में ऐसी कोशिकाएँ भी पाई जाती हैं जो अपने-आप में एक अलग-थलग इकलौती हस्ती होती हैं।

अवलोकनों का पहला चक्र

खुद स्रोत व्यक्ति और उनके निर्देशों के अनुसार अन्य शिक्षक प्रयोग शुरू कर देते हैं। प्लास्टिक के कटोरे के अन्दर रुई का छोटा-सा गद्दा बनाकर कच्चे अण्डे को उसमें टिका दिया जाता है। चिमटी की सहायता से अण्डे के चपटे सिरे की ओर बाहरी कठोर कवच (खोल) का एक छोटा-सा हिस्सा तोड़ा जाता है। प्रशिक्षक पहले ही चेता देते हैं कि कवच में से अन्दर की सामग्री छलककर बाहर बह जाने का खतरा है। हर टोली एक सूची बनाती है कि कठोर कवच में बनाई गई खिड़की में से नंगी आँखों (चश्मा चलेगा) से क्या-क्या देखा जा सकता है। अन्य लोगों के साथ-साथ हमने भी देखा कि एक पारदर्शी, चिपचिपे, रंगहीन द्रव के ऊपर एक पीले या नारंगी रंग का अपारदर्शी गोल और चपटा अर्ध-ठोस पदार्थ तैर रहा है।

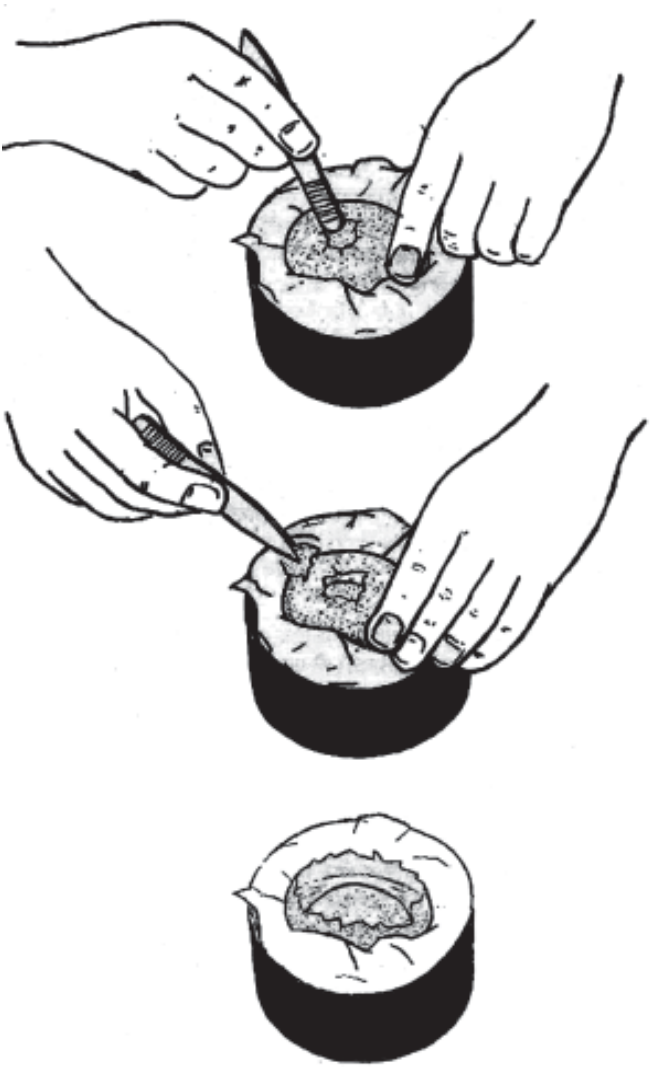

चित्र-1: जन्तु कोशिका की संरचना को समझने के लिए मुर्गी के कच्चे अण्डे को एक तरफ से तोड़कर अन्दरूनी संरचनाओं के अवलोकन किए गए।

आसपास एक अर्ध-पारदर्शी पर्दा है जो कठोर कवच से जुड़ा है और सारे पदार्थों को घेरे हुए है। अवलोकन सूची बनाने के बाद इन विभिन्न चीज़ों के नामों और उनके संघटन को लेकर चर्चा, सवाल-जवाब चले। उदाहरण के लिए पारदर्शी, चिपचिपा, रंगहीन पदार्थ एल्ब्यूमिन है। पीला-नारंगी पदार्थ योक है और इन सबको घेरे हुए पर्दा झिल्ली है। इनके संघटन में प्रोटीन, वसा, विटामिन वगैरह हैं।

इसके आधार पर जन्तु कोशिका की संरचना के बारे में और चर्चा हुई – इस प्रयोग के अवलोकनों के आधार पर जितनी सम्भव थी। जब भी कोई निश्चित उत्तर सामने आता, उसे कॉपी में रिकॉर्ड कर लिया जाता (यह कॉपी समस्त स्रोत व्यक्तियों और प्रशिक्षुओं को दी गई थी)।

एक बार फिर अवलोकन

इस बार सबने यह कोशिश की कि यदि हैंडलेंस से देखा जाए तो और क्या-क्या पहचाना जा सकता है। कुछ अण्डों में पीले-नारंगी योक में धँसा हुआ एक सफेद रंग का धब्बा नज़र आया। यह सारे अण्डों में नहीं दिखा। सब लोगों ने अपने-अपने अवलोकन लिखे और इन दो चरणों में अवलोकनों के आधार पर कच्चे अण्डे के अन्दर का एक मोटा-मोटा चित्र बनाया। चर्चा के दौरान यह बात सामने आई कि उस धब्बे जैसी रचना को भ्रूण कहते हैं। यह भी कहा गया कि हम अगले दिन यह देखेंगे कि यह विकास की किन अवस्थाओं से गुज़रता है और इसमें क्या परिवर्तन होते हैं। इस छोटे-से धब्बे से विहीन अण्डे अनिषेचित हैं यानी इनमें से कोई चूज़ा नहीं बनेगा। कई लोगों ने आपस में अपने अनुभव साझा किए। चर्चा मज़ेदार रही।

पूरे कमरे में शोरगुल हो रहा था - यह कक्षा अपने बचपन की यादों की कक्षाओं के पिन-ड्रॉप साइलेंस से एकदम उलट थी। होंठों पर उंगली रखकर चुप रहने का इशारा करने की बजाय, खुद स्रोत व्यक्तियों ने कोलाहल में अपनी आवाज़ जोड़ दी। ऊँची आवाज़ों में थोड़ी देर तक ऐसे आदान-प्रदान के बाद हमें यह पता चला कि कई लोगों ने ध्यान दिया है कि पोल्ट्री के अण्डों से आम तौर पर चूज़े नहीं निकलते (मैं विनम्रतापूर्वक कहना चाहूँगा कि मैं इस बात की सच्चाई की गवाही नहीं दे सकता)। एक अटकल यह लगाई गई कि अण्डों की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए शायद मुर्गियों (आम तौर पर संकर किस्म की मुर्गियों) के साथ मुर्गे को नहीं छोड़ा जाता होगा। दूसरी ओर, देसी मुर्गियों के मामले में नर और मादा, दोनों साथ घूमते रहते हैं। तो इस तरह से चूज़े रहित अण्डों की गुत्थी सुलझ गई।

नया प्रयोग

सारे कच्चे फूटे अण्डों के अन्दर की पूरी सामग्री को प्लास्टिक की ऊँची किनोर वाली तश्तरी में रखे नमकीन

पानी में उड़ेल दिया गया। नमकीन पानी साधारण पानी में नमक घोलकर बनाया गया था। उससे पहले हरेक टोली ने पारदर्शी चिपचिपे पदार्थ की थोड़ी-सी मात्रा को एक परखनली में रख लिया था। नमकीन पानी क्यों? यह बताया गया कि भ्रूण ऐसे पानी में ज़्यादा समय तक जीवित रहता है क्योंकि नमकीन पानी कोशिकाओं की गतिविधियों को ज़्यादा देर तक चलने में मदद करता है। यह भी ज़िक्र हुआ कि जो 'सलाइन' मरीज़ों को चढ़ाया जाता है वह मूलतः ऐसा ही नमकीन पानी होता है और मरीज़ के शरीर में लगभग यही भूमिका निभाता है अर्थात् शरीर की कोशिकाओं को शरीर में ऐसे तरल की कमी होने पर जीवित रहने में मदद करना।

अगले कदम में, सब लोग अपनी आँखों से, हैंडलेंस के बगैर या हैंडलेंस की मदद से, अन्य रचनाओं को देखने लगे (जैसे, श्लेष्मा झिल्ली, उत्सर्जी पदार्थों के भण्डारण हेतु थैली वगैरह)। इनमें से कुछ रचनाएँ तश्तरी में उड़ेले गए पदार्थ में थीं तो कुछ अण्डे के खाली खोल में। पहले बनाई गई सूची व चित्र में नई जानकारी जोड़ी जाती है और इन रचनाओं की सम्भावित भूमिका पर चर्चा होती है, अटकलें लगाई जाती हैं।

अब छिले हुए उबले अण्डे को खड़े में दो हिस्सों में काट दिया गया। कच्चे अण्डे के अन्दर जो कुछ दिखा और उबले अण्डे को काटकर जो कुछ दिखा, उनकी तुलना की गई। दोनों में कुछ स्पष्ट समानताएँ हैं। उदाहरण के लिए, कच्चे अण्डे में जो अर्ध-ठोस चकती के आकार का पीला योक था, वह उबले अण्डे में लगभग उसी रंग के गोलाकार ठोस में परिवर्तित हो गया था। जिस स्थान पर अण्डे के कम नुकीले सिरे की तरफ कवच के अन्दर की ओर हवा की थैली (मैं पहले इसका ज़िक्र करना भूल गया था) जुड़ी थी, वह उबले अण्डे में उसी स्थान पर एक गड्ढे के रूप में दिखाई देती है।

परखनली में रखे गए रंगहीन पारदर्शी द्रव को जब गर्म किया गया तो वह सबके सामने मुलायम ठोस में परिवर्तित हो गया। यह लगभग वैसा ही था जैसा उबले अण्डे में भी दिखा था। तो यह साफ हो गया कि उबले अण्डे का सफेद वाला हिस्सा वास्तव में एल्ब्यूमिन ही है। अलबत्ता, एकाध चीज़ को लेकर शंकाएँ बनी रहीं। जैसे उबले अण्डे में पीले भाग के आसपास एक हल्के काले रंग की पतली-सी रेखा होती है जो उसे सफेद भाग से अलग करती है। सवाल उठता है कि कच्चे अण्डे का कौन-सा भाग उबलने पर इस काली रेखा में परिवर्तित हो जाता है। काफी चर्चा के बाद भी कोई साफ उत्तर नहीं मिला। स्रोत व्यक्ति खुलकर स्वीकार करते हैं कि वे उत्तर देने में असमर्थ हैं और वे किताबों में देखकर बताएँगे। मुझे पता नहीं कि उन्हें उत्तर मिल पाया या नहीं।

प्रयोग का दूसरा दिन

इस समय तक हम (पश्चिम बंगाल के दो प्रेक्षक) अण्डों के इस क्रमिक नाटक को लेकर काफी जिज्ञासु हो चुके थे और अगले अंक की प्रतीक्षा कर रहे थे। निर्धारित दिन (हालाँकि, निर्धारित समय पर नहीं यानी थोड़ी देर से) हम उसी कक्षा में उपस्थित हो गए। किट सामग्री का वितरण पूरा हो चुका है। जी हाँ, हर दिन पाठ पूरा होने के बाद प्रशिक्षु किट सामग्री को एक जगह इकट्ठा कर देते हैं और स्रोत व्यक्ति उसे किट कक्ष तक ले जाते हैं, कभी-कभी प्रशिक्षु शिक्षकों की मदद ले लेते हैं। अगली कक्षा में इसे एक बार फिर वितरित किया जाता है, हालाँकि उपकरण लगभग वही रहते हैं।

प्रयोग सामग्री के तौर पर प्रत्येक टोली को अलग-अलग अवस्थाओं तक विकसित कच्चे अण्डे दिए गए थे। एक अण्डा तीन दिन तक सेया गया था और दूसरे को सात दिन। सेने का काम कृत्रिम रूप से विक्रम विश्वविद्यालय की प्राणि विज्ञान प्रयोगशाला में इनक्यूबेटर में किया गया था। ये प्रशिक्षु शिक्षक अपने-अपने गाँवों के स्कूल में पढ़ाने जाएँगे तब अण्डों को सेने का यह काम वहाँ आसानी-से उपलब्ध मुर्गियों को ही सौंप दिया जाएगा।

पिछले दिन की तरह आज का काम भी यही था कि एक-एक करके अण्डों के छिलकों को सावधानीपूर्वक तोड़कर खोला जाए और अन्दर की सारी सामग्री नमकीन पानी में उड़ेल दी जाए। इसके बाद अवलोकन करके रिकॉर्ड करना था। यही किया गया। तीन दिनों तक सेए गए अण्डे में दिखा कि पिछले दिन के अण्डे में जो सूक्ष्म और लगभग रंगहीन गतिहीन बिन्दु दिख रहा था, पता चला (हैंडलेंस से देखने पर या सीधे आँखों से देखने पर) कि उसका स्थान एक किरमिजी रंग के थोड़े बड़े आकार के धड़कते बिन्दु ने ले लिया था। कहना न होगा कि सिर्फ निषेचित अण्डों को ही सेया गया था। निषेचित अण्डों और अनिषेचित अण्डों में फर्क कैसे किया जाता है (मुझे तो दोनों एक जैसे ही दिखे), इस बात की चर्चा कक्षा में नहीं हुई।

तत्काल पूरी कक्षा दबी-दबी उत्तेजित आवाज़ों से भर गई। हम समझ गए कि जो नज़ारा सामने आया है, वह जितना नया हमारे लिए है, उतना ही उनके लिए भी है। चर्चा के दौरान पता चला कि सेने की क्रिया में मिली गर्मी ने निषेचित अण्डों में वृद्धि और विकास की प्रक्रिया को शुरू कर दिया था और वह धड़कता बिन्दु एक अजन्मे चूज़े का हृदय है। अब प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता था कि शरीर के सारे अंगों में से हृदय सबसे पहले बनता है और एक पतली-सी झिल्ली को छोड़ दें, तो शुरुआत में इस पर कोई आवरण नहीं होता।

अगले प्रयोग में सात दिनों तक सेए गए अण्डे को फोड़कर छानबीन की गई। एक पतली मांसल गर्दन योक में से निकल चुकी थी और उसके ऊपरी सिरे पर दो बड़ी-बड़ी आँखें उभरी हुई थीं। गर्दन योक से बाहर निकल आई थी और उसके ऊपरी सिरे पर दो आँखें उभर आई थीं। आँखों के ठीक नीचे एक कठोर चीज़ हल्की-सी उभरी हुई थी जो लगभग चोंच की तरह दिख रही थी क्योंकि उसका अगला सिरा थोड़ा नुकीला था। सारे अण्डों में तो नहीं, किन्तु कुछ अण्डों में धक-धक करता हृदय नज़र आ रहा था। मज़ेदार बात यह थी कि योक के अन्दर धागे जैसी रचनाएँ बनने लगी थीं जिनकी शाखाएँ विभिन्न दिशाओं में फैल रही थीं। इन धागों ने योक को अपने जाल में लपेट लिया था। इनमें से कुछ धागे गहरे लाल रंग के थे जबकि कुछ सफेद, हल्के काले या नीले थे। मैं नहीं बता सकता कि कौन-से धागे संख्या में ज़्यादा थे मगर लगता था कि लाल धागे ज़्यादा नज़र आ रहे थे, शायद अन्य के मुकाबले ज़्यादा चमकीले होने के कारण। योक का आयतन कम हो गया था और योक से एक बड़ी-सी पारदर्शी रंगहीन थैली निकलकर पारदर्शी एल्ब्यूमिन में तैर रही थी। थैली के पेंदे में हरा-सा कुछ पदार्थ इकट्ठा हो गया था।

इसके बाद अटकलों, अन्दाज़ों और सवालों से जीवन्त एक रोमांचक सत्र हुआ। बीच-बीच में कोई स्रोत व्यक्ति (देखी गई नई रचनाओं के भविष्य को लेकर) चलते-चलते कोई सवाल उछाल देता ताकि चर्चा की निरन्तरता और प्रासंगिकता बनी रहे। और वे पूरी कक्षा में घूम-घूमकर यह भी देख रहे थे कि प्रत्येक टोली ने इस 'ऑपरेशन अण्डा' को कितनी सफलता से अंजाम दिया है। यदि किसी टोली में यह ठीक से नहीं हुआ तो वे मदद करते थे। प्रशिक्षु भी एक-दूसरे की मदद कर रहे थे और कई तो इस मामले में प्रशिक्षकों से उन्नीस नहीं पड़ रहे थे। जहाँ तक हमारा सवाल है, हम भी तमाशबीन नहीं रह सकते थे। हम भी उस शोरगुल में शरीक हो गए और नौसिखियों के लिए जितना सम्भव था, उतनी भागीदारी हमने की। हम किसी को चिमटी दे देते, किसी के हैंडलेंस में नज़रें गड़ाकर देख लेते, वगैरह। उस दिन से पहले तक अण्डे से हमारा रिश्ता सिर्फ उसके स्वाद का लुत्फ उठाने और गटक जाने का रहा था (शायद मैं थोड़ा गलत कह गया क्योंकि कक्षा 4 या 5 में पाठ के एक हिस्से के रूप में मैंने रॉबिन, फिश-टेल्ड पक्षी के अण्डों की साइज़, आकार और रंग वगैरह के बारे में रट्टा मारा था, हालाँकि मुर्गी, बत्तख, कबूतर, छिपकली और कॉकरोच के अलावा मैंने और किसी के अण्डे देखे नहीं थे)। अपनी कमज़ोर हिन्दी (कक्षा में सारी बातचीत हिन्दी में चल रही थी) के बावजूद हम अपनी मासूम टिप्पणियाँ

चित्र-2: तीन और सात दिन तक सेए गए मुर्गी के अण्डों को खोलकर, तश्तरी में उड़ेलकर उनका ध्यान से अवलोकन किया जाता है - यह देखने के लिए कि उनमें क्या-क्या परिवर्तन हो रहे हैं।

पूरे जोश के साथ व्यक्त करने से खुद को रोक नहीं पाए।

ऐसे जीवन्त और कभी-कभी थोड़ी गर्मी से भरे आदान-प्रदान के ज़रिए एक के बाद एक निष्कर्ष स्पष्टता से उभरने लगे। गर्मी के उपयुक्त स्तर से प्रेरित होकर भ्रूण तेज़ी-से एक सम्पूर्ण चूज़ा बनने की राह पर चल पड़ा है (यदि अण्डों को ऐसे ही छोड़ दिया जाता या गर्म पानी में रखा जाता तो तापमान शायद अधिकतम या न्यूनतम सीमा के अन्दर न होता)। जिन अण्डों का अवलोकन किया गया था उनके लिए तो यात्रा समाप्त हो चुकी है क्योंकि उस सुरक्षित आश्रय को तहस-नहस कर दिया है, भ्रूण जिसका अन्तरंग हिस्सा था और उसे एक ऐसे जटिल व कठिन पर्यावरण में धकेल दिया गया है जिसके लिए वे अभी तैयार नहीं थे। वृद्धि और विकास की अपनी यात्रा के लिए भ्रूण योक से पोषण प्राप्त कर रहा था। और जैसा कि अवलोकन किया गया, इसी वजह से योक का आयतन कम हो रहा था। यह पोषण उसे उन धागेनुमा रचनाओं से प्राप्त हो रहा था जिनके सिरे योक के अन्दर गहराई में खुलते थे। अर्थात् ये धागे और कुछ नहीं, नई-नवेली धमनियाँ (लाल वाली) और शिराएँ (गैर-लाल वाली) हैं।

चर्चा के द्वारा धीरे-धीरे यह स्पष्ट हुआ कि कोशिकाओं की संख्यावृद्धि (जिसके माध्यम से शरीर का आयतन बढ़ता है) और कोशिका विभेदन (जिसके माध्यम से एक-सी दिखने वाली कोशिकाओं से अलग-अलग प्रकार की कोशिकाएँ बनती हैं) सजीवों की वृद्धि और परिवर्धन की दो अनिवार्य प्रक्रियाएँ हैं – गर्दन का माँस, आँखें, धमनियाँ, शिराएँ, और लाल रक्त कोशिकाएँ सब अलग-अलग प्रकार की कोशिकाओं से बने होते हैं। पोषण को अंगीकार करने के लिए ज़रूरी ऑक्सीजन (यह बात इस प्रयोग से नहीं बल्कि किताबों से और पहले किए गए अन्य प्रयोगों से ज्ञात थी) की पूर्ति उस वायु-थैली द्वारा की जाती है जिसे पहले ही देखा जा चुका था। पारदर्शी थैली में जो हरा पदार्थ जमा हुआ था उसके बारे में लगाई गई अटकल कि वह उत्सर्जी पदार्थ है, किताबों में सही निकली। गौरतलब है कि एक अपारगम्य थैली में उत्सर्जी पदार्थ को जमा करने से अण्डे के अन्दर 'पर्यावरण प्रदूषण' से बचाव हो जाता है। हर चरण में रेखाचित्र तथा आम सहमति से निकले निष्कर्ष हर सहभागी द्वारा रिकॉर्ड किए गए। कक्षा इस रहस्यमय उम्मीद के साथ समाप्त हुई कि अगले अंक में कौन-सा पिटारा खुलेगा।

प्रयोग का तीसरा दिन

इस निरन्तर चल रहे प्रयोग का तीसरा व अन्तिम दिन आ गया। दस दिन सेए गए अण्डों को फोड़ा गया। चूज़े के शरीर के सारे प्रमुख अंग स्पष्ट नज़र आ रहे थे। विभिन्न अंगों के अन्दर कंकाल का ढाँचा प्रत्यक्ष था। पिछली बार यह इतना साफ नहीं था।

जो चोंच पहले नाममात्र की थी, वह अब काफी कठोर और पक्षी की जानी-पहचानी चोंच जैसी दिख रही थी। आँखें पहले के समान ही उभरी हुई और बड़ी-बड़ी थीं। हृदय शरीर के अन्दर कहीं ओझल हो चुका था। पोषक योक और कम हो चुका था तथा शरीर के उत्सर्जी पदार्थ की थैली फूल चुकी थी और उसमें और ज़्यादा हरा पदार्थ इकट्ठा हो चुका था। पिछली बार जो कुछ देखा था उसे किसी भी पक्षी के निर्माण की अवस्था कहा जा सकता था मगर इस बार एक चूज़े की आकृति एकदम स्पष्ट थी। अर्थात् मुर्गी के भ्रूण का विकास और आगे बढ़ चुका था।

यह ज़ाहिर-सी बात बताना मुनासिब होगा कि चूज़े की वृद्धि व विकास की अलग-अलग अवस्थाओं का अवलोकन अलग-अलग अण्डों में किया जा रहा था। किसी भी अण्डे को फोड़ने का मतलब है उसकी जीवनलीला को पूर्ण विराम लगा देना।

दस दिन सेए गए अण्डों में दिख रहे चूज़ों की एक चीज़ ध्यान खींचती थी – बोथरे मांसल अंगों की दो क्षैतिज जोड़ियाँ। ये अधकचरे चूज़े के सीने से निकल रही थीं और एक जोड़ी दूसरी से थोड़ी ऊपर की ओर थी। ये क्या हैं? जन्म के बाद एक पूर्ण विकसित मुर्गे के परिचित आकार को ध्यान में रखें तो (काफी चर्चा और अटकलबाज़ी के बाद) यह अनुमान तर्कसंगत लगा कि इनके परिचित आकार के बावजूद शायद भविष्य में ये किसी और कार्य के लिए बने हैं। तो निष्कर्ष यह निकला कि ऊपरी जोड़ी तो पंख बनेगी और निचली जोड़ी टांगें बनेंगी।

यहाँ काफी स्वाभाविक रूप से और प्रासंगिक रूप से इस बात पर बहस शुरू हो गई कि कैसे भ्रूण से पूर्ण जीव के विकास की यात्रा में पृथ्वी पर करोड़ों वर्षों से चल रहा जीवन का विकास समेट लिया गया है और इस तरह से यह इस बात की ओर इशारा करता है कि वर्तमान के आइने में अतीत को देखें तो हमें विकासशील अतीत को समझने में मदद मिलती है। इस चर्चा ने जो ठोस, विश्वसनीय और स्वीकार्य रूप लिया उसका कारण था कि सबकी आँखों के सामने वे खुले हुए अण्डे मौजूद थे। ऐसी चर्चा मात्र किताब में दिए गए विकास-वृक्ष के मानक चित्र के आधार पर सम्भव न होती। किन्तु ऐसे प्रायोगिक अनुभव के बाद वही मृत वृक्ष जीवित हो उठता है और उस चित्र में निहित सन्देश को व्यक्त कर देता है।

चर्चा एक मज़ेदार समस्या की ओर मुड़ जाती है। प्रशिक्षुओं में से कोई यह सवाल उठाता है कि अर्ध-विकसित चूज़े की आँखें इतनी बड़ी-बड़ी क्यों दिखती हैं। सही है, दिखती तो हैं। मगर जन्म के बाद मुर्गे में ऐसा क्यों नहीं है? यहाँ तक कि वयस्क मुर्गे की आँखें तो अपेक्षाकृत छोटी ही होती हैं। क्या ऐसा हो सकता है कि जहाँ सारे अंग बड़े हो रहे हैं, वहीं आँखों में सिकुड़ने की उल्टी प्रक्रिया शुरू हो

जाती हो? सबको लगता है कि यह सम्भव नहीं लग रहा। एक कमोबेश अस्थायी-सा निष्कर्ष निकलता है कि किसी कारण से, जिसे समझा नहीं गया है, शुरुआत में आँखें तेज़ी-से बढ़ती हैं। आगे चलकर अन्य अंगों का विकास तेज़ होकर आँखों के समकक्ष हो जाता है और उनसे आगे निकल जाता है। पूरी तरह विकसित चूज़े में आँखें उतनी बड़ी नहीं दिखतीं क्योंकि शरीर के अन्य अंग अनुपात में कहीं ज़्यादा बड़े हो जाते हैं।

अन्त और उसके बाद

अण्डे, भ्रूण और चूज़े के प्रयोग यहाँ समाप्त हो गए। पूरा विकसित मुर्गा दिखाना अनावश्यक लगता है क्योंकि उससे तो सब परिचित हैं। जिन तीन दिनों में ये प्रयोग किए गए वे लगातार एक के बाद एक दिन नहीं थे, बल्कि तीन सप्ताह में बिखरे हुए थे। इस प्रायोगिक अध्याय का शीर्षक था 'विकास' (आकार/आयतन में वृद्धि और नए किस्म की कोशिकाओं तथा अंगों का बनना)। इसका सम्बन्ध किसी खास अण्डे, भ्रूण या चूज़े के विकास से नहीं बल्कि सजीवों के वृद्धि और विकास से था।

इसी शीर्षक के अन्तर्गत कई दिनों तक बीजों के अंकुरण से लेकर पौधों की वृद्धि व विकास से सम्बन्धित कई प्रयोग किए गए, हालाँकि मैं उन सबमें उपस्थित नहीं था। यह पाठ कक्षा-7 के पाठ्यक्रम में रखा गया है। कहना न होगा कि इस अध्याय ने मुझे खास तौर से रोमांचित किया। यहाँ तक कि कोलकाता में मेरे मित्र, जो जीव विज्ञान में औपचारिक रूप से प्रशिक्षित हैं, वे भी इस वर्णन से काफी रोमांचित थे। उन्होंने मुझे बताया कि उनके पाठ्यक्रम में किसी भी चरण पर उन्हें किसी सजीव की वृद्धि और विकास का इतनी नज़दीकी से अवलोकन करने का मौका कभी नहीं मिला था। यदि पाठकों को वही रोमांच महसूस नहीं हो रहा हो, तो वह मेरी रिपोर्टिंग की गुणवत्ता के कारण है।

प्रशिक्षण ले रहे शिक्षकों की ज़िम्मेदारी यह है कि वे अपने छात्रों के लिए यथासम्भव आदान-प्रदान की ऐसी ही प्रक्रिया सुनिश्चित करें। यह सवाल तो है ही कि वे किस हद तक ऐसा कर सकते हैं और वास्तव में करते हैं। चूँकि यह प्रशिक्षण गर्मी की छुट्टियों में हो रहा था इसलिए हमारे पास यह जानने का कोई तरीका नहीं था। तो इसके लिए हमने एक असन्तोषजनक वैकल्पिक तरीके का उपयोग किया – प्रशिक्षु शिक्षकों और *एकलव्य* के कार्यकर्ताओं से बातचीत। इस बातचीत से जो अटकलनुमा तस्वीर उभरी, उसकी चर्चा फिर कभी कर सकते हैं।

अलबत्ता, अध्यायों में आदान-प्रदान के इस अलग-थलग-से उदाहरण के आधार पर भी इस कार्यक्रम की विशेषताएँ और सम्भावनाएँ मेरे जैसे शिक्षण शास्त्र और शिक्षा पद्धति को लेकर अनाड़ी व्यक्ति की आँखों से भी

ओझल नहीं रहेंगी। आगे (भाग-2) एक प्रयास है कि हमने वहाँ जो कुछ भी देखा, उसे एक उदाहरण के रूप में लेकर पोस्ट-मॉर्टम करें। सक्षम हाथों में भी किसी अनुभव का विश्लेषण उस अनुभव के विवरण से तो कम रोचक ही रहेगा। तो मैं एक विच्छेदन की 'रूखी-सूखी' कवायद से अधिक का वायदा नहीं करूँगा और उम्मीद करूँगा कि जिन लोगों के धीरज ने उपरोक्त विवरण को पढ़ते-पढ़ते अभी तक साथ नहीं छोड़ा है, वे पढ़ना जारी रखेंगे।

सुभाष चन्द्र गांगुली: राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ता व आयोजक। लेख, पत्र, सम्पादकीय लेख आदि के रूप में बांग्ला और अँग्रेज़ी में लिखा है और इनमें सामाजिक, राजनीतिक, नागरिक अधिकारों एवं अन्य मुद्दों व विषयों को समाहित किया है। बांग्ला में कुछ उल्लेखनीय अनुवाद कार्य भी किए हैं, उदाहरण के लिए पुस्तक *अशोक एंड द डिक्लाइन ऑफ द मौर्यास* का अनुवाद।

अँग्रेज़ी से अनुवादः सुशील जोशी: एकलव्य द्वारा संचालित *स्रोत* फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सभी चित्र बाल वैज्ञानिक, कक्षा-7 (संस्करण 1980) से साभार।

संदर्भ के अंक

- यदि आपको समय पर नहीं मिल रहे हों,
- लिफाफे पर लिखे आपके पते में कोई त्रुटि हो,
- यदि आपके पते में परिवर्तन हो गया हो,

तो, कृपया तुरन्त निम्न पते पर या फोन नम्बर या ई-मेल पर हमें सूचना दीजिए।

एकलव्य फाउंडेशन

जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी,
भोपाल, म.प्र. पिन - 462026
फोनः 0755 - 2977770, 71, 72, 73
ई-मेलः circulation@eklavya.in